अध्याय - चौथा

" चेहरे नाटक की प्रायोगिकता "

४-१-७

रंगमंच :-

नाटक को दृश्य काव्य कहा जाता है। उसमें श्रव्य के साथ - साथ दृश्य अंग को भी महत्वपूर्ण माना है। कभी आलोचक नाटक के दृश्य या प्रयोगपक्ष को श्रव्य से ज्यादा महत्वपूर्ण मानते हैं। वे ऐसा सोचते है कि नाटक केवल पढ़ने की वस्तु नहीं है। नाटक को सफलता उसके रंगमंच पर होनेवाले प्रयोग पर अवलंबित है। इसलिए तो भरतमुनि ने नाटक को " आँखों का यज्ञ " कहा था। उपन्यास, कहानी, काव्य की तरह एकांत में बैठकर नाटक का पूरा आस्वाद हम नहीं ले सकते। इसलिए रंगमंच पर उसका प्रयोग होना महत्वपूर्ण माना गया। क्योंकि नाटक सत्य का आभास निर्माण करता है। पात्रों के रूप में वह हमारे सामने प्रत्यक्ष होता है। और उसका आस्वाद भी सभीप्रकार के लोग ले सकते हैं। यह जो साधारणीकरण की बात नाटक में है, उतनी साहित्य की किसी दूसरी विधा में नहीं है।

नाटक के इस प्रयोग का बच्चोंसे लेकर बड़ो तक स्त्री - पुरुष, गरीब - अमीर, पढ़े - अनपढ़े सभी रसास्वाद ले सकते हैं और प्रत्यक्ष का आनंद उसकी रंगमंचीयता से उठाते है। इसलिए नाटक को भरतमुनि ने सर्व श्रेष्ठ माना है। " काव्येषू नाटकं रम्यं। " इस प्रकार इ॰ स॰ पूर्व से ही याने हजारों बरसो से पहले नाटक की रंगमंचीयता का महत्व आलोचकों ने विशद किया है।

नाटक विधा को और एक कारण से महत्वपूर्ण माना गया है कि उसमें अनेक कलाओं का संगम होता है। रंगमंचीयता के माध्यम से इन कलाओं का साधारणीकरण होता है। पात्रों के हाव - भाव के रूप में अभिनयकला, चित्रकला, संगीतकला, नृत्यकला, साहित्यकला आदि अनेक कलाओं का संगम नाटक में होने के कारण नाटक को सर्वश्रेष्ठ साहित्य - विधा का सम्मान मिला है।

इसका अर्थ यह नहीं है कि साहित्यिक गुणों में कम होनेवाला नाटक के बल रंगमंच से श्रेष्ठ माना जाय। नाटक में श्रेष्ठ साहित्यीक गुणों का होना भी अत्यंत आवश्यक है पर केवल साहित्यिक गुणों से युक्त नाटक रंगमंच के अभाव में अधूरा होगा। यदि नाटक में साहित्यिक गुणों के साथ साथ रंगमंचीय प्रायोगिक गुण होंगे तो वह एक श्रेष्ठ नाटक माना जाएगा।

हिन्दी रंगमंच का इतिहास

भारतेंदू-युग :::

आधुनिक हिन्दी नाटकों की कला का सूत्रापात भारतेंदू हरिश्चंद्र से माना जाता है। उन्होंने अनुवादित और मौलिक ऐसे सतरह नाटक लिखाकर हिन्दी नाट्य-साहित्य की बुनियाद डाली। उन्होंने - " नाटक " नाम का नाटकीय सिध्दातों का विवेचन करनेवाला ग्रंथ भी लिखा है। भारतेंदू नाट्यशास्त्र के अच्छे ज्ञाता थे पर उनके नाटकों की रचना का मूल उद्देश्य मनोरंजन और जनमानस को जागृत करना था। जैसे :- अंधेरनगरी आदि। ये नाटक समाजसुधार, राष्ट्रवादी विचारों को लेकर लिखे गये। भारतेंदू युग में संस्कृत, बंगला - अंग्रेजी आदि भाषाओं से अनुवादित नाटक लिखे गये। पर ये नाटक रंगमंच की दृष्टि को ध्यान में लेकर नहीं लिखे गये थे।

विध्देवेदी युग ::

भारतेंदू के बाद विध्देवेदीयुग आ गया। पर विध्देवेदी युग के नाटकों मे इतिवृत्तात्मकता की प्रधानता थी। रंगमंच की दृष्टि से इस युग में कई ठोस प्रयोग नहीं हुए। इस युग के नाटककार नैतिकता तथा आदर्शवादीता से अत्यंत प्रभावित थे। इस काल में हिन्दी नाटकों पर पारसी रंगमंच

का प्रभाव अधिक रहा। पारसी रंगमंच की सुलभता, मनोरंजकता, अश्लील हाव भाव भावों के कारण सामान्यजन हीन अभिरुचि के पारसी रंगमंच की ओर आकर्षित हुआ। इस काल में राज्यशासन कर्ता के रूप में इस देशपर अंग्रेजों का पूरी तरह बस रहा। उन्होंने बंबई, कलकत्ता जैसे नगरों में थिएटरों की स्थापना की, पर इन थिएटरों में खेले जानेवाले नाटकों का मकसद केवल मनोरंजन रहा। पारसी रंगमंच के इस प्रभाव के कारण इस युग के नाटकों का कोई महत्व नहीं रहा। इस काल के प्रमुख नाटककार थे राधेश्याम, कथावाचक, आगा हश्र, कश्मीरी, नारायण प्रसाद बेताब, तुलसिदास शाहीदा, बदरीनाथ भट्ट, वियोगी हरि आदि।

प्रसादयुग ::

भारतेंदु के बाद प्रसाद जैसे प्रतिभासंपन्न नाटककार का हिन्दी में अविर्भाव हुआ। वैसे तो भारतेंदू ने साहित्यिक गुणों से युक्त नाटक लिखकर हिन्दी नाटक का जो सूत्रपात किया उसका उत्कर्ष प्रसाद युग में दिखायी देता है। भारतेंदू के पूर्व और बाद में पारसी कंपनीओद्वारा खेले जानेवाले हिन्दी नाटक असाहित्यिक, हीन अभिरुचि के थे। उनमें साहित्यिक नाटकों का अभाव ही था, पर जयशंकर प्रसाद ने इस कमी को मौलिक नाटक लिखकर दूर किया। भारतेंदू ने मौलीक नाटकों की जो परंपरा दी थी उसको आगे बढाने का काम प्रसादजी ने किया। प्रसादजीने हीन और सस्ती अभिरुचि का पोषक पारसी रंगमंच अपने सामने नहीं रखा।

प्रसादजी मुख्यत: ऐतिहासिक नाटककार थे। विशाखा, अजात शत्रू, जनमेजय, स्कंदगुप्त, चंद्रगुप्त, ध्रूव - स्वामिनि आदि। अनेक मौलीक ऐतिहासिक नाटक उन्होंने लिखे। अपने नाटकों में उन्होने भारत के गौरवमय अतीत का चित्राण किया है। प्रसादजी ने हिन्दी नाट्य साहित्य को एक स्वतंत्रा व्यक्तित्व प्रदान किया। अपने नाटको में उन्होने भारतीय और पाश्चात्य नाट्यकला का सुंदर सामंजस्य निर्माण किया। उन्होंने भारतीय नाट्यतत्व के " रस " को एक और महत्व दिया तो दूसरी ओर पाश्चात्य नाटकों के विषयवस्तु, चरित्रचित्राण, संघर्ष को अपनाया। जयशंकर प्रसाद के ये नाटक केवल ऐतिहासिक नहीं थे तो इतिहास को उन्होंने आधुनिक संदर्भ में देखा। ऐतिहासिक पात्रों का आज के संदर्भ में विचार किया। ये नाटक केवल इतिहास को विवेचना के लिए नहीं तो वर्तमान समय के मार्गदर्शन के रूप में लिखे गये। इन नाटको में साहित्यिक गुणोंसे पूरे भरे थे। उनमें गहन जीवनदर्शन भी था और व्यापक दृष्टिकोन भी था। इसप्रकार प्रसाद के ऐतिहासिक नाटको में भारतीय संस्कृति का प्रभावात्मक चित्र वर्तमान का जिवंत से संदेश तथा भविष्य को आशा है। देशभक्ति तथा राष्ट्रीयत्व को गहरी छाप उनके नाटकों पर है।

प्रसाद के नाटकों का रंगमंच को दृष्टिसे अध्ययन करते समय कुछ बाते हम नजर अंदाज नहीं कर सकते। उनके नाटक साहित्यिक गुणों से युक्त जरूर थे, पर उनकी दुरूह शैली काव्यमयता, दार्शनिकता इन दोषों के कारण ये नाटक

सामान्यजनों के लिए सहजगम्य नहीं थे, और उनको रंगमंच पर लाना कठीन था। क्योंकि ये नाटक रंगमंच के लिए उतने अनुकुल नहीं थे।

प्रसाद के नाटकों पर और उसको प्रायोगिकता के बारे में आलोचकों में मतभेद है। कई आलोचक ऐसा कहते है कि जयशंकर प्रसाद के नाटक साहित्यिक गुणों के साथ - साथ रंगमंचीय गुणों से युक्त थे पर उस काल में उन नाटकों के लिए अच्छा रंगमंच नहीं मिला। अच्छे रंगमंच का अभाव हो था और पारसी रंगमंच पर ये नाटक कभी खेले नहीं जा सकते थे। रंगमंचीय गुण होते हुए भी कुशल अभिनेता और सुसज्ज रंगमंच के अभाव में उनके नाटकों के प्रयोग नहीं हो सके। इसकारण कई आलोचक उनके नाटक रंगमंच के लिए उपयुक्त नहीं मानते। ये उनके नाटक सहजता से रंगमंच पर खेलने योग्य नहीं है, ऐसा मानते है।

प्रसादयुग में उनको प्रेरणा लेकर लिखनेवाले अनेक नाटककार निर्माण हुए। हरिकृष्ण प्रेमी, सेठ गोविंददास, गोविंद वल्लभ पंत, उदयशंकर भट्ट, लक्ष्मीनारायण मिश्र आदि। इन नाटक कारों ने प्रसाद की परंपरा का निर्वाह किया।

प्रसाद की मृत्यु के पश्चात इ॰ स॰ १९३७ से १९४७ तक जो नाटक लिखे गये उनमें कलात्मकता बिल्कुल नहीं थी। उनके नाटकोंमें आदर्शत अधिक थी। इन नाटकों के पात्र कृत्रिम लगते थे। उनमें कलापूर्णता या अंतरसंघर्ष नहीं था। कुलमिलाकर प्रसाद के बाद एक दशक तक के नाटक एवंस्तर के समान और कला की कसौटी पर सामान्य नजर आते है।

:: स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक ::

स्वातंत्र्योत्तर काल में हिन्दी में नये - नये नाटककार उभर आये। उनमें उपेंद्रनाथ अश्क, जगदीशचंद्र माथुर, धर्मवीर भारती, मोहन राकेश, विष्णू प्रभाकर, मन्नू भंडारी, भुवनेश्वर मणिमधूकर और शंकर शेष आदि प्रमुख है। कथ्य, शिल्प, शैली, मंच सभी दृष्टि से नाटक पूर्ण रूप से विकसित होने लगा। रंगमंच जीवन के यथार्थ से जुड़ गया। उपरयुक्त उल्लेखित नाटककारों ने अनेक मौलिक नाटक लिखे, जो रंगमंच की दृष्टि से सशक्त थे। स्वातंत्र्योत्तर काल में भारत में अनेक शहरों में हिन्दी रंगमंचो की स्थापना हुई। और रंगमंच की दृष्टि से अनेक सुविधाएँ निर्माण हो गयी। नाटककार रंगमंच को ध्यान में लेकर लिखाने लगे और नाटकों के प्रयोग भी अधिक मात्रा में होने लगे। इब्सन, ब्रेख्त एब्सर्ड आदि नाट्यशैलिओं का प्रभाव

भी इन नाटकों पर पड़ा। बंबई, कलकत्ता, इलाहाबाद, दिल्ली आदि नगरों मे अनेक प्रायोगिक रंगमंच निर्माण हुए। नाटक को यथार्थ बनाने का और मंच के निकट लाने काम काम मूर्धन्य नाटककारों ने किया। रोमैंटीक और ऐतिहासिक नाटकों को जगह यथार्थवादी नाटकों ने ली। लक्ष्मीनारायण लाल के अंधा कुआ, मादा कैक्टस, सूखा सरोवर आदि नाटक बहुचर्चित रहे है डॉ॰ लाल को मंचीय अनुभव था। वे खुद अच्छे अभिनेता थे। नाटक के प्रयोगों का भी उनका अनुभव था। आधुनिक रंगमंचीय तकनिको तंत्रों से वे परिचित थे। इसकारण इनके नाटकों मे मंचिय संभावनाएँ अधिक रही।

लक्ष्मीनारायण लाल के बाद मोहन राकेश आधुनिक काल के बहुचर्चित नाटककार रहे है। मोहन राकेश के सभी नाटक इस युग की महान उपलब्धि है। उनके " आषाढ का एक दिन " " आधे - अधूरे " , " लहरों के राजहंस ", कथ्य, शिल्प, शैली की दृष्टिसे जितने नये है, उतने ही रंगमंच की दृष्टिसे नये है। " आषाढ का एक दिन " कालिदास और मालिका के आंतरीक संघर्ष को उजागर करते है। " आधे - अधूरे " सामाजिक विसंगतिओं का नाटक है। राकेश ने इस में मध्यमवर्गीय व्यक्तित्व की अपूर्णता और रिक्तता को कलात्मक रूप से यहाँ दर्शाया है। यह नाटक हिन्दी साहित्य की अमूल्य - निधि रहा है। इसका रंगमंचीय प्रयोग भी सराहा गया। धर्मवीर भारती का अंधायुग विष्णू प्रभाकर के " समाधि और डॉक्टर", मन्नु भंडारी का " बिना दिवारों का घर और ज्ञानदेव अग्निहोत्री का "नेपथ्य" की एक श्याम " रंगमंच की दृष्टि से महत्वपूर्ण नाटक रहे। इन नाटककारों ने साहित्य और मंच दोनों को मध्य नजर करके नाटक लिखे।

स्वातंत्र्योत्तर काल में बाकी प्रांतों से भी प्रायोगिक नाटकों की चलती रही। बादल सरकार का, " पगला घोडा ", गिरीश कर्नाड का " हयवदन " विजय तेंडूलकर के " घाशीराम कोतवाल ", " गिध्द " आदि श्रेष्ठ नाटकों का हिन्दी में अनुवाद हुआ। उसका भी प्रयोगिक नाटकों पर बड़ा प्रभाव रहा। इसप्रकार हिन्दी नाटक और रंगमंच का इस काल में समन्वय होने लगा। शिल्प शैली, मंच, अभिनय जैसे विभिन्न आयामों के विकास से प्रयोगधर्मी नाटकों की शृंखला निर्माण हुई। समकालीन जीवन की व्याख्या इन नाटकों में होने लगी और रंगमंच की दृष्टि से ये नाटककार अपने नाटकों को देखने लगे। इसप्रकार रंगमंच की दृष्टि से आधुनिक काल में हिन्दी नाटक अधिक विकसित हुआ।

डॉ. शेष का हिन्दी नाटकोंमें योगदान

डॉ. शंकर शेष स्वातंत्र्योत्तर काल के एक महत्वपूर्ण नाटककार रहे। इस मराठी भाषिक हिन्दी नाटककार ने हिन्दी नाटकों में अपना एक स्थान बनाया है। " एक और द्रोणाचार्य " " फन्दी " " बेहरे " " खाजुराहो का शिल्पी " " रक्तबीज " " कोमल गांधार " जैसे कलात्मक और प्रायोगिक नाटक लिखकर अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। इसलिए डॉ. सुनिल कुमार लवटे उन्हे प्रयोगधर्मी नाटककार मानते है। अपने नाटकों मे समकालीन जीवन की व्यापक व्याख्या वे प्रस्तुत करते रहे। डॉ. शेष ने प्रयोगिकता की दृष्टि से

वे तो मौलोक है हो। यथार्थवादो भो है, बदलते हुए जोवन मूल्यों का बड़ा यथार्थ और मार्मिक चित्राण उन्होंने अपने नाटको में किया है। बदलते युग के अनुरूप अनेक विषयों पर नाटक लिखे। उन विषयों को अभिव्यक्ती अधिक सुक्ष्म रहो। आधुनिक युग में मंच से और विज्ञान से जो उथल-पुथल मचो है और परिणामस्वरूप जो एकाकोपन, निराशा, मुल्यों का अवमूल्यन हो चुका है उसका यथार्थ चित्राण उनके अनेक नाटको में हो चुका है। डॉ॰ शेष मध्यमवर्गिय व्यक्ति होने के कारण आधुनिक मध्यवर्ग में जो कुण्ठा, तनाव, स्त्री पुरुष संबंध से उत्पन्न संघर्ष उनका चित्राण बडे यथार्थ रूप में उन्होंने अपने नाटकोंमें किया है।

डॉ॰ शेष ने नाटकों को सबसे बड़ो विशेषता: उनके प्रयोगों मे रहो। नाटक के दृश्य बंध को उन्होंने अधिक महत्व दिया। वे नाट्य लेखन में रंगमंच को अधिक महत्व देते थे। उनके नाटक स्वातंत्र्योत्तर मंचिय परंपरा का निर्वाह करनेवाले नाटक है। उनका हर नाटक एक नया प्रयोग रहा। उनके नाटकों को यह सबसे बड़ो विशेषता है कि उनका प्रत्येक नाटक प्रथम मंच पर आया है और बाद में ग्रंथ रूप में आया है। इतनाही नहीं तो उनका हर नाटक अनेक बार मंच पर अभिनित हुआ है। फन्दो, पोस्टर, चेहरे, खजुराहो का शिल्पो और एक और द्रोणाचार्य नाटक रंगमंच के लिए चुनौती रहे। हिन्दो रंगमंच में उन्होंने क्रांति मचायो। उनके नाटकों का प्रयोगशिलता के प्रति अनेक श्रेष्ठ निर्देशक आकर्षित हुए। शेष के नाटकों ने दर्शकों को अपनी ओर आकर्षित किया क्योंकि डॉ॰ शेष नाटक को हमेशा प्रायोगिकता को

दृष्टि से देखा करते थे । वे ऐसा मानते थे कि नाटक केवल साहित्य नहीं, केवल पढ़ने की वस्तु नहीं तो उससे भी कुछ और अधिक है। नाटक की प्रक्रिया केवल लिखे जाने से समाप्त नहीं होती तो रंगमंच पर अभिनेताओं द्वारा प्राण-प्रतिष्ठा के बिना नाटक को संपूर्णता प्राप्त नहीं होती, इसलिए रंगमंच से अलग करके नाटक का मूल्यांकन अपूर्ण ही नहीं भ्रामक होगा।[५] नाटक को रंगमंच से अलग करके केवल साहित्यिक रचना के रूप में डॉ॰ शेष ने कभी नहीं देखा।

फिल्म का आक्रमण रंगमंच पर होने लगा था। रंगमंच के अभाव के कारण भी यह रंगमंच परंपरा विच्छिन्न हो गयी थी। नाटक बहुत कम लिखे गये और जो लिखेगये उनका प्रायोगिक मूल्य न के बराबर था। आलोचक भी नाटक की आलोचना रंगमंच को ध्यान में न लेकर एक साहित्य विधा के रूप में करते थे । स्वातंत्र्यपूर्व कालीन नाटककार रंगमंच से बहुत क्षीण संबंध रहा। यह बात डॉ॰ शेष को हमेशा अखरती रही।

स्वातंत्र्योत्तर काल में हिन्दी नाटकमें कथ्य, शिल्प, शैली, भाषा, रंगमंच आदि के संदर्भ में जो बदलाव आये डॉ॰ शेष ने उन सबका निर्वाह करके हमें उत्तमोत्तम नाटक दिये। इनकी इस प्रयोगशीलता के कारण उन्हें " प्रयोगधर्मी नाटककार " कहा जाता है। रंगमंच के लिए समर्पित होकर

उन्होंने नाटक लेखन किया। डॉ॰ शेष मराठी मातृभाषी होने के कारण मराठी रंगभूमि पर जो नये नये प्रयोग हो रहे थे उनको देखते थे और उनका भी प्रभाव उनके नाटकों पर पड़ा। जब हिन्दी नाटक प्रयोगधर्मी परंपरा का अन्वेषण कर रहा था। तब डॉ॰ शेष " मूर्ति " " पोस्टर " " एक और द्रोणाचार्य" " चेहरे " " खजुराहों का शिल्पी ", जैसे प्रयोगशील नाटक लिखकर हिन्दी नाटक में अवतरित हुए आशय की दृष्टि से डॉ॰ शेष के नाटक अपनी एक विशेषता रखते है उसीप्रकार मंच की दृष्टि से उनकी अपनी एक विशेषता है। रंगमंच के लिए किस प्रकार का नाटक होना चाहिए यह वे जानते थे। इसलिए अपने नाटकों का निर्माण ही उन्होंने रंगमंच के लिए किया। उनके " मूर्तिकार " जैसे पहले कई नाटक छात्रों की माँग पर स्टेज पर खेलने के लिए ही लिखे लिखे गये। यह मंचीय दृष्टिकोन ध्यान में रखकर उन्होंने अगले नाटक लिखे। " संघर्ष " नाटक का प्राणतत्व यह सोचकर उन्होंने सुक्ष्म मानसिक संघर्ष से युक्त नाटक लिखे। संघर्ष को उन्होने इसलिए महत्व दिया कि संघर्ष शून्य नाटक रंगमंचपर सफल नहीं हो सकते। संघर्ष हो तो दर्शकों का कुतूहल भी अंत तक रहता है उनके नाटक दर्शकों की उत्सुकता जगानेवाले और कुतूहल बढ़ानेवाले रहे। मंच को वे कितना महत्व देते थे इसके बारेमें उन्होने ही एक जगहपर लिखा है " नाटक लिखने से पहले मै कल्पना चक्षुओं से उसे पूरा देखता हूँ, कल्पना के भव्य मंचपर एक अकेले दर्शक के सन्मुख होते नाटक का जो सुख मुझे मिलता है वह वर्णनातीत है। "

हिन्दी नाटक के क्षेत्र में सत्यदेव, जयदेव हट्टंगडी, अरविंद देशपांडे, सुलभा देशपांडे, वी. शांताराम जैसे निर्देशकों ने उनके नाटकों को निर्देशित किया और उनकी प्रयोगधर्मी नाटककार के रूपमें सराहना की। सुलभा देशपांडे और अरविंद देशपांडे ने जब उनका " रक्तबीज " नाटक पढ़ा तब वे इतने प्रभावित हो गये कि उन्होंने अपनी अविष्कार नाट्य मंडली का हिन्दी विभाग प्रारंभ किया। डॉ. शेष ने राक्षस, नौटंकी शैली, पोस्टर - किर्तन शैली में, ऐसी अनेक लोककलात्मक शैली में नाटक लिखाकर डॉ. शेष ने हिन्दी रंगमंच के लिए बडा योगदान दिया। उनको सारी नाट्यकृति के सफल मंचन का सौभाग्य उन्हे मिला।

आज के वैज्ञानिक युग में रंगमंच का रूप ही बदल गया है। रेडिओ, दूरदर्शन का उसमें समावेश हो गया है। ध्वनि, संगीत, प्रकाश जैसे साधनोंसे यह रंगमंच अधिक विकसित हो गया है। इन साधनों का डॉ. शेष नेअपने नाटकों के प्रयोग के लिए साधन रूप में प्रयोग किया। डॉ. शेष के नाटक दिल्ली, बंबई, कलकत्ता, नागपूर, बिलासपुर आदि अनेक जगह पर मंचित हो चुके हैं। डॉ. शेष रंगमंच रेडिओ, चित्रपट, दूरदर्शन जैसे माध्यमों के लिए लिखाते रहे हर माध्यम की मर्यादा और विशेषता वे अच्छि तरह जानते थे। उसी के अनुरूप नाट्यलेखन करते थे। वे इन माध्यमों को एक - दूसरे के विरोधी नहीं बल्कि पूरक मानते थे। उनके अनेक नाटक रंगमंच की तरह रेडिओ और दूरदर्शन पर आ चुके है। तो

" घरौंदा " जैसे नाटकों पर फिल्मे भी बनी है।

डॉ० शेष ने अपने नाटकों में अनेकानेक प्रयोग किये। उनका फंदी नाटक एक ही पात्र अनेक चरित्रों की भूमिका निभाता है। वहाँ एक पात्र नौ पात्रों की भूमिका निभाता है। जिसे देखकर हमे मराठी के " तो मी नव्हेच " के अनेक पात्रों का अभिनय करनेवाले प्रभाकर पणशीकर की याद आती है। पोस्टर, अरे! मायावी सरोवर, राक्षस, नाटको में उन्होने लोकनृत्य, लोकसंगीत का बडा सशक्त प्रयोग किया है। उन्होंने अपने पोस्टर में कीर्तन, भजन, ~~लोकगीत~~, लोकगीत, समूहगान, आरती जैसे गीतों के विभिन्न प्रकारों का प्रयोग किया है। जिस देखकर हमे विजय तेंडूलकर के घाशीराम कोतवाल के प्रयोग की याद आती है। उनका " अरे! मायावी सरोवर " नौटंकी शैली में लिखा नाटक है। - तो " एक और द्रोणाचार्य " में उन्होने समानांतर चलनेवाली दो कथाओं का प्रयोग किया है। आधुनिक युग का प्रा० अरविंद प्राचीन युग के द्रोणाचार्य इनकी समानांतर कथा एक नया प्रयोग हो रहा। उन दोनो कथाओं मे होनेवाला दृश्य परिवर्तन प्रकाश और अंधेरे के माध्यम से दिखाया है। उसी प्रकार आधुनिक रंगभूमिपर जो नये नयेप्रयोग होने लगे हैं उनमे ध्वनिप्रयोग भी महत्वपूर्ण है। रेडिओ तो केवल ध्वनि माध्यम है उसके अनुकूल भी उन्होंने कई नाटक लिखे है। " खजुराहों का शिल्पी " पहले रेडिओ पर आया था और उसे सर्वश्रेष्ठ नाटक का राष्ट्रीय पुरस्कार मिला था। एक और द्रोणाचार्य ने उन्होंने दृश्यत्व को दोहरे आयामों में व्यक्तकिया किया तथा मन को भी पात्र के रूप में दिखाया है।

उनके नाटकों की और एक विशेषता यह है कि कम से कम साधनों की सहायता से वे मंच पर खेले जा सकते है। बार बार पर्दे गिराने को या दृश्य बदलने की आवश्यकता नहीं होती।

इसप्रकार नित्य नये प्रयोग और नयी तंत्रप्रणाली का अवलंब करने की उनकी प्रवृत्ति रही। सफल प्रयोग के लिए आधुनिक अनेक साधनों को उन्होंने अपनाया। नाट्यलेखन में उन्होंने रंगमंच पर अधिक ध्यान दिया। उनके नाटक रंगमंच पर सहजता से मंचित किये जा सकते हैं। कम से कम पात्रों से अधिक भूमिकाएँ निभाने का उन्होंने भी प्रयोग किया है। आज के वैज्ञानिक युग के अनुकूल ध्वनि, प्रकाश, संगीत का प्रयोग उन्होंने किया है। रेडिओ, दूरदर्शन, चित्रपट सभी माध्यमों के लिए उन्होंने नाटक लिखे है। इसप्रकार उनका हर नाटक एक नया प्रयोग रहा है।

" पेहरे " नाटक की प्रायोगिकता :-

डॉ. शेष ने यह नाटक विशेषत: टी.वी. के लिए लिखा था। हमारे देश में उस वक्त यह एक नया माध्यम था। उसी माध्यम का साधन रूप में अपने नाटकों के लिए डॉ. शेष प्रयोग करना चाहते थे। उस दरमियान ही भारत में टी. वी. प्रसार हो रहा था। वैसे तो रंगमंच, रेडिओ,

इ॰ के लिए वे नाटक लिखा हो रहे थो। पर इस माध्यम को भी उन्होंने चुनौती के रूप में स्वीकृत किया। १९७० में उन्होंने यह नाटक लिखा। हर माध्यम की अपनी अपनी एक विशेषता होती है। उसीप्रकार दूरदर्शन की अपनी कुछ विशेषताएँ होती है। उन विशेषताओं को ध्यान में लेकर यह नाटक उन्होंने लिखा। इसकारण उनका यह नाटक भी एक प्रायोगिक नाटक रहा। दुरदर्शन का माध्यमगत अध्ययन भी उन्होने किया। यह माध्यम रंगमंच से अधिक लचीला है। इस माध्यम में सिनेमा और रंगमंच दोनों का सामंजस्य रहता है उसमें कैमेरे के रूप में सिनेमा तंत्र को भी अपनाया गया है। टी॰ वी॰ मे जो रूपक खाड़ा किया जाता है उसमें कैमेरा और ध्वनि लेखन का अधिक महत्व रहता है। टी॰ वी॰ के॰ क्लोजअप के कारण इसमें नट के अभिनय को बारीकियाँ अधिक मुखार होती है। इसमें नट सिर्फ कैमरे की ओर सतर्क रहता है। प्रारंभ में जो टी॰ वी॰ नाटक लिखे गये उनमें अधिकतर वैयक्तिक संघर्ष के चित्राण को प्रधानता थी। वह धीरे धीरे डॉ॰ शंकर शेष जैसे प्रयोगशील नाटकारोने उसमें व्यापकता लाने का प्रयत्न किया। टी॰ वी॰ की और एक विशेषता यह है कि अनेक कोनों से उसमें दृश्य उतारे जाते है। रंगमंच पर प्रेक्षक केवल सामने का दृश्य देखा सकता है, पर दूरदर्शन पर कैमेरा सभी ओर का दृश्य उतार सकता है। टी॰ वी॰ का पर्दा छोटा रहता है और उसका समय भी सीमित रहता है। इसलिए यह माध्यम फिल्म की अपेक्षा शीघ्रगति का और कम खार्च का होता है। टी॰ वी॰ की और एक बात यह है कि कार्यक्रम पसंत न होने पर दर्शक टी॰ वी॰ को बंद कर सकता है, वैसा फिल्म या नाटक में नहीं कर सकता। नाटक और सिनेमा के नीरस अंश को भी उसे मजबुरन देखना पड़ता है। टी॰वी॰ के नाटक रंगमंचीय नाटकों की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली होते है। और फिल्म की अपेक्षा अधिक सरल सस्ते होते है। टी॰वी॰

को सारी विशेषताएँ चेहरे में दिखायी देती है। डॉ. शेष ने कैमरे को क्लोजअप की सुविधा ध्यान में लेकर चेहरे को रंगमंच बनाया है। हर पात्र के चेहरे को दिखाकर उसके अंदर जो छिपे चेहरे है उनको भी सामने लाने का प्रयत्न किया है। क्योंकि यह सारा नाटक अनंत चेहरों के इर्दगिर्द घूमता है। चेहरे अर्थात हमारे सबके अपने चहरे जो अंदर से कुछ और बाहर से कुछ अलग दिखायी देते है, जो वैसा है वैसा है भी या नहीं, यह एक बड़ा प्रश्न नाटककार यहाँ उठाता है और अपनी अपनी ओर से कुछ न कहकर केवल चेहरों के माध्यम से हर मनुष्य का असली और नकली चेहरा दिखाने का प्रयत्न करता है। प्रत्येक का चेहरा खुद अपनी वास्तविकता व्यक्त करने पर विवश हो जाता है।

इस नाटक का पहला प्रयोग बंबई दूरदर्शन पर श्री विरेंद्र शर्मा के निर्देशन में हुआ। यह सितम्बर १९७९ में प्रथम प्रदर्शित किया गया। इसमें महान कलाकारों ने अपने अपने चरित्र निभाये।

क ला का र

१] भारोसे	-	भारतभूषण
२] अध्यापिका	-	रत्नाभूषण
३] बैंदासिंह	-	गोगा कपूर
४] विनोदकुमार	-	नरेश सुरो
५] कमलो	-	कविता चौधारो
६] पंडित	-	विश्रान्त माथूर
७] भावानो	-	ओ. पो. कोहलो

८] सुखालाल - ब्रजभूषण साहनी
९] परमानन्द - एम. एस. सोढी
१०] रमाकान्त - धर्मेश तिवारी
११] ग्रामीण - राज शर्मा

प्रस्तुत कर्ता :- वीरेंद्र शर्मा

निर्देशन सहायक :- शरण विराजदार.

डॉ. शेष ने इन प्रयोगशील नाटकों के लिए सिद्धहस्त रंगकर्मी, निर्देशक भी उन्हें मिले। असल में " चेहरे" जैसे प्रयोगशील नाटक इन निर्देशकों के लिए एक चुनौती भी थी। पर इस चुनौती का स्वीकार करके दर्शकों को अच्छा प्रयोग दिखाने का काम भी उन्होंने किया। श्री सत्यदेव दुबे, बी. वी. कारंथ, अरविंद देशपांडे, सुलभा देशपांडे, जयदेव हट्टंगडी , जैसे महान निर्देशक उन्हे अपने नाटकों के लिए मिले।

डॉ. शेष की और एक विशेषता यह थी कि उन्होने इन निर्देशकों को पूरी तरह से स्वतंत्रता दी थी। क्योंकि वे नाटक के प्रयोग को अत्यंत महत्व देते थे । हिन्दी नाटकों में आनेवाले बदलाव का ध्यान लेकर वे निरंतर नये नये प्रयोग करते है। नाटक के सृजन के साथ - साथ मंचन को उन्होंने अधिक महत्व दिया था। इसलिए वे ऐसा सोचते थे कि प्रयोग की दृष्टि नाटककार की अपेक्षा निर्देशक की अधिक रहती है। इसलिए वे इच्छे प्रयोग के लिए निर्देशकों को खुली छुट देते थे। इसलिए वे निर्देशकों से कहते थे अरे, भाई

नाटक अब तुम्हारा है, समूचा बदल डालोगे तो भी मुझे कोई एतराज नहीं [शर्त] सिर्फ इतनी ही है कि वह नाटक हो ना चाहिए और अपने मूल कथ्य को ठेस नहीं पहुँचनी चाहिए। इस वक्तव्य से वे नाट्यप्रयोग को कितना महत्व देते थे यह मालूम हो जाता है। " पेहरे " के लिए उन्होंने निर्देशक वीरेंद्र शर्मा को ऐसी ही खुली छूट दी थी।

डॉ॰ शेष के नाटक मंचन के लिए अधिक आसान हो जाते। इसका और एक कारण यह है वे रंगमंच सम्बंधित सभी निर्देशों अपने नाटकों में देते है। " डॉ॰ शेष का हर नाटक रंगमंच पर बहुत सफल रहा, केवल अपनी सामाजिकता और पौराणिकता के कारण ही नहीं कुछ प्रभावशाली रंगमंचीय निर्देशकों के कारण और पूर्वावलोकन पद्धति के प्रभावपूर्ण प्रयोगों के कारण वे अधिक सफल रहे। "

पेहरे नाटक में कुल १२० निर्देश है। उनमें नाटककार ने स्थल पृष्ठ ९, काल पृष्ठ ३५, ५२, ५३ अभिनय आने - जाने का तरीका पृष्ठ ३२, कैमेरा कहाँ हो पृष्ठ २४, ३९, इसप्रकार के मंचन के लिए अत्यंत उपयुक्त ऐसे निर्देश दिये है। टी॰ वी॰ माध्यम का उन्होंने पुरा अध्ययन किया था। यह भी उनके इन निर्देशों से दिखायी देता है। क्योंकि डॉ॰ शंकर शेष अपने मनपक्षी के सामने अपना पूरा नाटक देखते थे।

यह नाटक और एक दृष्टिसे प्रयोग शील नाटक रहा कि अब तक की पुरानी परंपरा को उन्होंने छोड दिया है। इस नाटक में मरघाट का स्थल है। एक लाश के इर्दगिर्द मरघाट में ये सभी पात्र बैठे है। वैसे तो शायद यह प्रयोग हिन्दी में पहला ही होगा। ऐसा प्रयोग मराठी में सतिश आलेकर के " महानिर्वाण " में हुआ। बादल सरकार के " पगला घोडा" में हुआ है। हिन्दी में इसप्रकार का प्रयोग केवल शंकर शेष का ही दिखाई देता है। यह नाटक आरंभ से अंततक खाण्डहर के पास के मरघाट पर ही चलता है। यहींपर नाटककार ने मरघाट और लाश दिखाने में कोई संकोच नहीं किया। इसप्रकार लाश का दृश्य हिन्दी में शायद पहला ही हो। स्थल की दृष्टिसे यह एक नया प्रयोग ही कहना चाहिए।

घेहरे एक असंगत नाटक :-

दरअसल यह नाटक द्वितीय विश्वयुद्ध के परिवेश की उपज है। दन दो महान युद्धोने बेरोजगारी, आर्थिक विषमता, संस्कृतिनाश, नीति मूल्यों का अवमूल्यन और मनुष्य में उभरायी पशुता का चित्राण किया है। महायुद्धों से सारा जीवन ही छिन्न विछिन्न कर दिया। मनुष्य का मनुष्यता और मानव पर होनेवाला विश्वास नष्ट हुआ। इन युद्धों का बडा गहरा प्रभाव विश्व के सभी मानवों पर पडा। जीवन के प्रति अनास्था निर्माण हुई। मनुष्य मनुष्य में अविश्वास निर्माण हुआ। जीवन की सारी आस्थाएँ, निष्ठाएँ, विश्वास धडाधड टूटने लगे। जीवन के सभी क्षेत्रोंमें एक भीषण अराजकता की स्थिति उत्पन्न हुई परंपरागत मूल्यों का विघटन हुआ पर नये मूल्यों की स्थापना नहीं हुई थी। मूल्यों के प्रति उपेक्षा का यह भाव सभी

असंगत नाटको में प्रतिबिम्बित हुआ है। हर असंगमत नाटक एक मूल्यहीनता की स्थिति प्रस्तुत करता है।[10] इसके आधारपर हम कह सकते है कि चेहरे नाटक भी एक असंगत नाटक है क्योंकि इस नाटक में जीवन मूल्यों का विघटन दिखाया है। मनुष्य कितना झूठा है। यह इसमें दिखाया है। इस नाटक का हर पात्र विसंगति का प्रतीक है। फिर वह विनोद हो, कुमार हो, सुखलाल हो, परमानंद हों या गेंदासिंह हो सभी असली चेहरे छिपाकर बैठे है। मनुष्य इतना नीतिहीन बना है, भावशून्य बना है कि दाह संस्कार के समय भी वह स्वार्थ को नहीं छोडता है। जैसे

भवानजी :- " अब क्या अरथी के पास बैठकर आप लोग पूरी कचौरी और लड्डू खायेंगे। "

रमाकांत :- " तो क्या लोग भूखे रह जाएँगे ? "

भवानजी :- " दो चार घंटे नहीं खाएँगे तो मर नहीं जाएँगे। मैं नही जानता था कि आप लोगों की आत्माएँ इतनी जड हो गयी है। "

इसप्रकार आजकल मनुष्य की असली आत्मा नष्ट हो गयी है। लाश के सामने कमली को भगा के ले जानेवाला विनोद और भरोसेजी की सारी जायदाद् हडप करने की इच्छा रखानेवाला भवानजी। इसप्रकार यहाँ का हर हडप करने की इच्छा रखानेवाला भवानीजी। इसप्रकार यहाँ का हर पात्र कुछ न कुछ स्वार्थ से प्रेरित है और प्रसंगवश उनकी पशुता नजर आती है। कुल मिलाकर आज का मूल्यहीन जीवन, भ्रष्ट राजनिति, बेकारी इन सब बातो का चित्रण इस नाटक में हुआ है।

डा॰ शेष ने जो प्रयोगशील नाटक लिखे उनमें चेहरे एक महत्वपूर्ण प्रयोगशील नाटक रहा। कथ्य, शिल्प, शैली एंव इन सभी दृष्टिओं से शेष की प्रयोगशीलता इस नाटक में दिखाई देती है।

0000

: संदर्भ - सूचि :

१] भारतमुनी का नाट्यशास्त्र

डॉ• शंकर शेष के नाटकों का अनुशीलन
डॉ• एम• एस• हसमनोस,
पृष्ठ - ३४५•

२] हिन्दी साहित्य का इतिहास :-

डॉ• नगेंद्र,
पृष्ठ ४७७

३] प्रयोगधर्मी नाटककार डॉ शंकर शेष :-

सुनिलकुमार लवटे,
पृष्ठ

४] रंगदर्शन

नेमिचंद जैन
पृष्ठ २२

५] नाटककार शंकर शेष

३१, सुनिलकुमार लवटे
पृष्ठ १८•

६] नाटक और रंगमंच

संपादक सुधाकर गोकाककर
डॉ. शिवराम माली,
पृष्ठ १५५.

७] डॉ. शंकर शेष के नाटकों का अनुशीलन

डॉ. मधुकर इसमनोस,
पृष्ठ - २७४.

0000

॥ उपसंहार ॥

१-१-१ व्यक्तित्व एवं कृतित्व

डॉ॰ शंकर शेष का जन्म २ अक्टूबर, १९३३ में बिलासपूर में हुआ। इनके पिता का नाम श्री नागोजीराव और माता का नाम सावित्रीदेवी था। उनकी आरंभिक शिक्षा बिलासपुर में हुई। उच्च शिक्षा के लिए नागपुर के मारिस कालेज में दाखिल हुए। नागपुर आकर उन्हें एक साहित्यिक परिवेश मिला। बी॰ ए॰ आनर्स की उपाधि नागपुर विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी में प्राप्त की। उपाधि प्राप्त करने के बाद मध्यप्रदेश की शिक्षा सेवा में सहाय्यक प्राध्यापक के रूप में भर्ती हो गये। डॉ॰ रामचंद्र नारायण अत्रे की कन्या सुधा से डॉ॰ शंकर शेष का विवाह १९ दिसम्बर १९५८ में सपन्न हुआ।

१-१-२ कृतित्व

डॉ॰ शंकर शेष ने अध्ययन के साथ लेखन को महत्व देकर लिखने का काम निरंतर जारी रखा। डॉ॰ शेष का पहला नाटक मूर्तिकार [१९५०] कॉलेज के दिनों में लिखा नाटक है। " मुर्तिकार " से जारी उनकी साहित्य सेवा निरंतर गतिशील नजर आती है। बेटोवाला बाप, नई सभ्यता के नये नमूने, रत्नगर्भा, विवाहमंडप, तिल का ताड एक के बाद एक लगातार सृजन होता गया। डॉ॰ शंकर शेष ने अपना अनुसंधान कार्य जारी रखा। डॉ॰ गोपाल गुप्ता के निर्देशन में अपना अनुसंधान कार्य सन १९६१ में पूरा किया। उनके " हिन्दी और मराठी कथा साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन " शीर्षक प्रबंध को पीएच॰डी॰ उपाधि

के लिए गौरवान्वित किया। " छत्तीसगढ़ी भाषा का शास्त्रीय अध्ययन ", " कुछ कविताएँ एवं कहानियाँ डॉ• शंकर शेष को सन १९५९ से १९६५ के काल की उपलब्धियाँ मानी जाती हैं।

सन १९५५ से लेकर सन १९८१ तक की साहित्य-यात्रा में हिन्दी के सुप्रसिद्ध नाटककार शंकर शेष ने बाईस नाटक, सात एकांकी, दो बाल नाटक, चार अनुदित नाटक, चार उपन्यास, तीन अनुसंधान प्रबंध, एक संकीर्ण, दो पटकथाएँ, एक पटकथा, संवाद लिखकर हिन्दी साहित्य को समृद्ध करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

डॉ• शंकर शेष का साहित्यिक रूप में उनके समग्र कृतित्व का मूल्यांकन किया जाय तो वे बहुमुखी कलाकार थे। नाटक उनकी लेखनीकी मूल प्रवृति है। उन्होंने रेडियो, रूपक, दूरदर्शन - रूपक जैसी विधाओं की रचना की। "चेहरे" नाटक को देखकर आधुनिक नाट्य साहित्य माध्यमों के तंत्र गतिका पता चलता है। इस नाटक का पूरा अनुशीलन करनेका प्रयास मैंने इस प्रबंधमें किया है। इस नाटकपर इतना विस्तृत विवेचन शायद ही किसीने किया होगा।

000

।। उपसंहार ।।

नाटककार डॉ॰ शंकर शेष सन १९५५ से १९८१ तक को अपनी नाट्ययात्रा में कथ्य, शिल्प एवं शैली को विविधता तथा प्रयोगशीलता से झालकते रहे। डॉ॰ शंकर शेष ने बाईस नाटकों का सृजन किया। कई नाटक छोड दिये जाय तो सभी नाटकों का मंचन हो चुका है। डॉ॰ शंकर शेष ने सामाजिक, पौराणिक ऐतिहासिक समकालीन विभिन्न विषयों को अपनाया है। प्राचीन कथा को लेकर नये संदर्भ [अर्थबोध] देने की उनकी असाधारण क्षमता ही उन्हे श्रेष्ठता , सफलता प्रदान करती है।

स्वातंत्र्योत्तर काल में मंचन की ओर ध्यान देकर नाटक लिखनेवाले जो नाटककार हैं उनमें डॉ शंकर शेष का स्थान महत्वपूर्ण है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक में एक अनूठे कथ्य का निर्वाह हुआ है। डॉ शेष का हर नाटक कथ्य की दृष्टि से एक अलग अलग प्रयोग रहा। मिथकशैली, व्यंग्यशैली, हास्यशैली, कीर्तन शैली, आदि अनेक शैलियों का प्रयोग उन्होंने अपने नाटकों में किया। उनके नाटकों में शैली - वैचित्र्य के साथ साथ विषय की विविधता दृष्टिगोचर होती है। उन्होंने सामाजिक, धार्मिक, आधुनिक समस्याओं को अपने लेखन का आधार बनाया। उनके नाटकों में मध्यवर्गीय जीवन की समस्याओं का चित्राण अनायास आ चुका है। ये समस्याएँ उस नाटक का अंग बनकर आ गयी है।

आधुनिक हिन्दी नाटकों को मंचन ने पूर्णत्व प्रदान किया है डॉ॰ शंकर शेष के सभी नाटक मंचन की कसौटी पर सफल हुए है। " पोस्टर " " रक्तबीज " जैसे नाटकों ने प्रयोग दृष्टि से उन्हे कीर्तिमान बनाया है।

" चेहरे " नाटक का पहला प्रदर्शन बम्बई दूरदर्शन केन्द्र से १ सितम्बर १९७९ को श्री वीरेंद्र शर्मा के निर्देशन में सफल हुआ। भारोसे, अध्यापिका, गेंदासिंह, विनोदकुमार, कमलो, पण्डितजो, भावानजो, सुखालाल, परमानंद, रमाकान्त, ग्रामीण का अभिनय क्रमशः- भारतभूषण, रत्नाभूषण, गोगाकपूर, नरेश सूरो, कविता चौधारो, विश्रान्त माथुर, ओ॰पो॰ कोहलो, ब्रजभूषण साहनो, एम॰एस॰सोढो, धर्मेश तिवारो, राज वर्मा ने किया। अभिनय की दृष्टि से नाटक कसा हुआ और संयत था। निर्देशक ने विभिन्न चेहरों और उसके आवरण में छिपे अन्य चेहरों को अभिनेताओं के अभिनय में घोल दिया था जिसे शरण विराजदार ने पूर्ण सहायता दी।

" चेहरे " नाटक में नाटककार शंकर शेष ने समाज के प्रतिष्ठतों का पर्दाफाश किया है। इस नाटक में ऐसे चेहरे दिखाये है अर्थात हमारे चेहरे सबके अपने सब के अंदर से कुछ और बाहर से कुछ और दिखाई देनेवाले चेहरे। जिन चेहरो के पीछे क्रूरता एवं नग्नता को पेश करना नाटककार का उद्देश्य है। स्वार्थ - लालच ने मनुष्य को कितना गिराया है। इस स्वार्थी समाज में मनुष्य अपनी नैतिकता खो बैठा है। हर मनुष्य किसी को सत्तापर, पैसोंपर, गहनोंपर, संस्थाओं पर दृष्टि लगाये बैठा है। गांव - गांव में दूसरों की संपति हडप करना यही सिलसिला चलता आ रहा है। हर गांव में भावानजो जैसे लोग है जो प्रतिष्ठत आदमी बनकर सत्ता हासिल करना चाहते है। कुछ अध्यापिकाजो, भारोसेजो, जैसे लोग है, जो अपना जीवन दूसरों के लिए खपा देते है। अपनी सारी संपति गांव के कल्याण के लिए अर्पण करते है। ऐसे जनसेवा समाजसेवा - लोककल्याण ही इनका धर्म है।

" चेहरे " नाटक में वेश्या उध्दार किया है। समाज में आज भी किसी विधवा को सम्मान नहीं दिया जाता वहाँ एक वेश्या का

श्रध्दार भारोसेजो जैसे महान लोग हो करते है। अध्यापिकाजो एक वेश्या थो लेकिन भारोसेजो उनको पिछलो ज़िंदगो पर पूर्ण रूप से पर्दा डालते है। एक वेश्या अध्यापिकाजो भो पूर्णरूप से अपनो पिछलो जिंदगो भूलकर अपना सारा पैसा, गहने संस्था के लिए अर्पण करतो है। नाटककार आज के बौने समाज के सामने कुछ आदर्श रखने में सफल हुअे है।

यह नाटक पढ़ने पर या देखने पर अध्यापिकाजो जैसो वेश्या को छाप मनपटल पर अपनो झाँको छोड जातो है। आदर्श स्त्रो के रूप में उसे हम स्वोकार करते है। चेहरे पर चेहरा चढ़ाए आज हर आदमो अपना असलो चेहरा छुपाए रखता है। समाज का शोषण करनेवाले ढोंगो लोगोंसे ये वेश्यएँ अच्छो है।

आज के नेताओं को चारित्रिक खुबियों पर व्यंग्य किया है। भवानजो आज के नेताओं का प्रतिनिधित्व करनेवाला नेता है। प्रतिष्ठा के मुखौटे पहनकर प्रतिष्ठित आदमो समाज का निर्मम शोषण करता है। आज के नेता लोग बिना मतलब से किसो को सहानुभूति नहीं दिखाते। अभिनय करने को कला उनके पास है।

" चेहरे " नाटक में चित्रित पात्र अपने गांव के किसो न किसो लोगों का प्रतिनिधित्व करनेवाला लगता है। गांव गांव में भवानजो, गेंदासिंह, सुखलाल, पंडितजो जैसे लोग आज भो मौजुद है।

इस वर्तमान जोवन में हर व्यक्ति नैतिकता को भाषा करता है, पर नैतिकता को भाषा वैयक्तिकता में अनैतिक होतो है। मानव

के हृदय में छिपे सत्ता के आकर्षण को रेखांकित करना नाटककार का उद्देश्य है। धर्म के नाम पर पाखण्डी लोगों पर नाटककार ने व्यंग्य किया है। यह नाटक निरंतर -ह्रास को चित्रित करनेवाला यह नाटक मानसिकता की पतनोन्मुखी जीवन गाथा है।

" चेहरे " नाटक में चित्रित विभिन्न समस्याओं का विवेचन - विश्लेषण करने के उपरान्त यही निष्कर्ष निकलता है कि नाटक में चित्रित समस्या किसी समसामयिक एवं स्थानीय समस्या को ही आधारभूत विषय बनाती है। " चेहरे " नाटक में युग - जीवन की असंगतियाँ उद्घाटित की है। भारतीय समाज की कतिपय समस्याओं के यथातथ्य रूपों का परिचय मिलता है।

" चेहरे " नाटक में व्यक्ति और समाज के संदर्भ में भीतर और बाहर के भेद करनी और कथनी के अंतराल, सोच की उच्चता, और कर्म की नीचता की विसंगतियाँ व्यक्त की गयी है। इस नाटक के माध्यम से कुछ पात्रों को सामने लाकर जीवन का वास्तविक चित्र प्रस्तुत किया है। चेहरे पर चेहरा चढ़ाए आज हर आदमी अपने असली चेहरे को छिपाये रखता है। आज समाज में आदमी को आदमी को पहचान करना मुश्किल हो गया है, क्योंकि चोर की खाल में ईमानदार और साह की खाल में चोर छिपाये रहता है।

इसके अतिरिक्त लडकियों को बदला - फूसलाकर लूटना, बंबई ले जाकर बेच देना, स्त्री - पुरुष सम्बन्धों के नैतिक सवाल पाप-अनाचार नैतिकता - अनैतिकता, सामाजिकता - असामाजिकता की समस्याओं पर चर्चा, जो घर घर की समस्या है, इन सभी समस्याओं का चित्राण नाटककार शंकर शेष ने इस नाटक में किया है। इसके साथ ही हृदय में छिपे सत्ता के आकर्षण

को रेखांकित करना भी नाटककार नहीं भूला। सुख - सुविधा ने और लोभ लालच ने मानव मन को श्रध्दा - विश्वास का जितना दम घोटा है, उतना किसी पूँजिपति ने किसी मजदूर का शोषण नहीं किया होगा। महत्वाकांक्षाओ को आधारो ने समाज में कुछ ऐसे लोग निर्माण किये है, जो दूसरों का इस्तेमाल करते है। वे ऑक्टोपस के समान होते है - अपनी भुजाओं में दूसरों को जकड़ते है, उनका खून चुसते जाते है - कुछ ऐसे भी होते है छोटों का शोषण करने लगते है।

" चेहरे " नाटक में सामाजिक समस्या को लेकर प्रेमविषयक समस्या, धर्म पाखण्डियों की समस्या, राजनीतिक समस्या, शोषक - शोषितों की समस्या, वेश्या - व्यवसाय करनेवाली स्त्री की समस्या, आर्थिक समस्या, मसान में शेड बनवाने की समस्या आदि समस्याओं का यथार्थ चित्रण हुआ है। भूखा मानव को पशुवत बना देती है। मानव की पहली समस्या भूख है। " चेहरे " नाटक में इसी " भूख " ने मानव को राक्षस बनाया है। एक भोले-भाले ग्रामीण द्वारा कर्ज की यातना भोगते हुए खानपान का सामान बिटिया के लिए, जुटाना, उसी पर सुखालाल, पण्डित और परमानंद आदि की गिध्द दृष्टि रखना भयावह लगता है। " चेहरे " नाटक में खाने के अलावा समय काटने की भी समस्या है। शव के साथ श्मसानभूमि में वक्त कैसा कटेगा, यह भी एक समस्या है।

" चेहरे " नाटक में चित्रित सभी समस्याओं का अध्ययन करने के बाद ऐसा प्रतीत होता है कि समस्याओं का चित्रण करना नाटककार का उद्देश्य नहीं है। वे मानवी जीवन का चित्रण को, मानव - प्रवृत्तियों का चित्रण करना चाहते थे पर इनके अंगरूप में ये समस्याएँ आ चुकी है। जिन समस्याओं को उन्होंने उठाया है, वे मानव जीवन की कमजोरियाँ है। " चेहरे " नाटक में नाटककार का उद्देश्य समस्याओं का चित्रन करना नहीं है।

नाटक मूलत: जीवन की अभिव्यक्ति है। इस संसारिक मंचपर आदमी अभिनय करता है। चेहरे पर चेहरा चढ़ाए अपना असली रूप छिपाये रखता है। आज व्यक्ति स्वार्थान्धता का राक्षस अपने अंदर - छिपाये रखता है। स्मशानभूमि में आकर भी अन्तिम क्रिया में भाग लेने और मौन श्रध्दांजलि देने के अतिरिक्त नाटक के सभी पात्र वह सब कुछ करते है जो उन्हे नहीं करना चाहिए। प्रेम-प्यार, व्यापार के नफे नुकसान की बात, शराब और सिगरेट का आनंद, एक - दूसरे पर कीचड़ उछालना, ताश और ट्रांजिस्टर के न होने का दु:ख प्रकट करना , पंचायत बिठाना, मारना-पिटना, एक-दूसरे को ब्लैकमेल की धमकी देना, शव के समक्ष बैठे ग्रामीण को लुटने की साजिश करना, प्रेस रिपोर्टरों से अलग अलग मुद्राओं से फोटो खिंचवाना और एक दूसरे के चेहरों से नकाब उलटाना आदि। इन घटनाओं को प्रस्तुत करने के लिए नाटककार ने खण्डहर जैसा स्थान चुना है।

डॉ. शंकर शेष स्वातंत्र्योत्तर काल के एक महत्वपूर्ण नाटककार रहे। इस मराठी भाषिक हिन्दी नाटककार ने हिन्दी नाटकों में अपना एक स्थान बनाया है। बदलते युग के अनुरूप अनेक विषयोंपर उन्होने नाटक लिखे। डॉ. शेष के नाटकों की सबसे बड़ी विशेषता: उनके प्रयोगों में रही। नाटक के दृश्य बंध को उन्होने अधिक महत्व दिया। नाट्य लेखन में रंगमंच को अधिक महत्व देते थे । उनका हर नाटक एक नया प्रयोग रहा। उनके नाटकों की यह सबसे बड़ी विशेषता है कि उनका प्रत्येक नाटक प्रथम मंच पर आया है और बाद में ग्रंथ रूप में आया है । इतनाही नहीं तो उनका हर नाटक अनेक बार मंच पर अभिनित हुआ है। " फन्दी "," पोस्टर "," चेहरे ", " खजुराहों का शिल्पी " और एक और द्रोणाचार्य नाटक रंगमंच के लिए चुनौती रहे। हिन्दी रंगमंच में उन्होने क्रांति मचायी। उनके नाटकों की प्रयोगशीलता के प्रति अनेक श्रेष्ठ निर्देशक आकर्षित हुए । शेष के नाटकों ने दर्शकों को अपनी ओर आकर्षीत किया।

चेहरे की प्रायोगिकता

डॉ॰ शेष ने यह नाटक विशेषत: टी॰ वी॰ के लिए लिखा था। इस १९७० में उन्होंने यह नाटक लिखा। हर माध्यम की अपनी अपनी एक विशेषता होती है। उसीप्रकार दूरदर्शन की अपनी कुछ विशेषता होती है। उन विशेषताओं को ध्यान में लेकर " चेहरे " नाटक उन्होंने लिखा। डॉ॰ शेष ने कैमेरे को क्लोजअप की सुविधा ध्यान में लेकर चेहरे को रंगमंच बनाया। हर पात्र के चेहरे को दिखाकर उसने अंदर छिपे जो चेहरे है उनको भी सामने लाने का प्रयत्न किया है। क्योंकि यह सारानाटक अनंत चेहरों के इर्दगिर्द घुमता है। चेहरे अर्थात सबके अपने चेहरे जो अंदर से कुछ और बाहर से कुछ अलग दिखायी देते है ", जो जैसा है वैसा है भी या नहीं, यह एक बड़ा प्रश्न नाटककार यहाँ उठाता है। अपनी ओर से कुछ न कहकर केवल चेहरों के माध्यम से हर मनुष्य का असली और नकली चेहरा दिखाने का प्रयत्न करता है। प्रत्येक का चेहरा अपना असली रूप व्यक्त करने पर विवश हो जाता है।

" चेहरे " नाटक का पहला प्रयोग बंबई दूरदर्शन पर श्री वीरेंद्र शर्मा के निर्देशन में हुआ। यह सितम्बर १९७९ में प्रदर्शित किया गया।

डॉ॰ शेष के इन प्रयोगशील नाटकों के लिए सिद्धहस्त, रंगकर्मी, निर्देशक भी उन्हे मिले। असल में " चेहरे " जैसे नाटक इन निर्देशकों के लिए एक चुनौती भी थी। इस चुनौती का स्वीकार करके दर्शकों को अच्छा प्रयोग दिखाने का काम भी उन्होंने किया।

चेहरे नाटक में कुछ १२० निर्देश है। " चेहरे " के लिए उन्होंने निर्देशक वीरेंद्र शर्मा को ऐसी खुली छुट दी थी। नाटककार ने स्थल पृष्ठ ९, काल पृष्ठ ३५, ५२, ५३, अभिनय आने - जाने का तरीका पृष्ठ ३२, कैमेरा कहा हो पृष्ठ २४, ३९ इसप्रकार के मंचन के लिए अत्यंत उपयुक्त ऐसे निर्देश दिये है। म टी॰ वी॰ माध्यम का उन्होंने पूरा अध्ययन किया था।

" चेहरे " नाटक में पुरानी परंपरा को छोड मरघाट स्थल लिया है। एक लाश के इर्द-गिर्द मरघाट में सभी पात्र बैठे है। शायद यह प्रयोग हिन्दी में पहला होगा। मराठी में ऐसा प्रयोग सतिश आलेकर के " महानिर्वाण " में हुआ है। बादल सरकार के " पगला घोडा " में हुआ है। हिन्दी में इसप्रकार का प्रयोग केवल शंकर शेष का ही दिखाई देता है। यह नाटक आरंभ से अंत तक खाण्डहर के पास मरघार पर चलता है। यहाँ पर नाटककार ने मरघाट और लाश दिखाने में कोई संकोच नहीं किया। इस नाटक को एक नया प्रयोग ही कहना चाहिए।

डॉ॰ शंकर शेष ने जो प्रयोगशील नाटक लिखे उनमें चेहरे एक महत्वपूर्ण प्रयोगशील नाटक रहा। कथ्य, शिल्प, शैली, मंच इन सभी दृष्टियों से शेष की प्रयोगशीलता इस नाटक में दिखायी देती है।

0000

परिशिष्ट - एक

संदर्भ ग्रंथ सूचि

१]	असंगत नाटक और रंगमंच	नरनारायण राय	- प्रथम संस्करण १९८१, दिल्ली
२]	नाट्यचिंतन नये संदर्भ	डॉ॰ चंद्र साहित्य रत्नालय	प्रथम संस्करण १९८७
३]	हिन्दी के प्रतीक नाटक और रंगमंच	डॉ॰ केदारनाथ सिंह	प्रथम संस्करण १९८५, कानपुर
४]	प्रयोगधर्मी नाटककार	डॉ॰ जगदीश चंद्र माथुर	प्रथम संस्करण १९८३, दिल्ली
५]	आधुनिक हिन्दी नाटक एक यात्रा दर्शक	नरनारायण राय	प्रथम संस्करण १९७९, दिल्ली
६]	समकालीन हिन्दी नाटककार	गिरीश रस्तोगी	प्रथम संस्करण १९८२, दिल्ली
७]	हिन्दी नाटक का विकास	डॉ॰ सुन्दरलाल शर्मा	१९७७, दिल्ली
८]	नाटक और रंगमंच	डॉ॰ चन्दूलाल दूबे	प्रथम संस्करण १९७९
९]	समकालीन हिन्दी नाटक	सरला गुप्ता भूपेन्द्र	प्रथम संस्करण १९८७, जयपुर
१०]	समस्या नाटककार अश्क	उमाशंकर सिंह	प्रथम संस्करण १९८२, वाराणसी

११]	नाटककार शंकर शेष	डॉ•सुनिलकुमार लवटे	प्रथम संस्करण १९८२, वाराणसी
१२]	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक	डॉ•रीताकुमार	प्रथम संस्करण १९८०, दिल्ली
१३]	राजपथ से जनपथ नटशिल्पी शंकर शेष	डॉ• शेर सुरेश डॉ•वीणा गौतम	प्रथम सं• १९८९, दिल्ली
१४]	डॉ•शंकर शेष का नाटक-साहित्य	डॉ•प्रकाश जाधव	संस्करण १९८८, कानपुर
१५]	डॉ•शेष के नाटकों का अनुशीलन	डॉ•मधुकर इसमनोस	
१६]	नाटक और रंगमंच	सं•डॉ•शिवराममाली डॉ•सुधाकर गोकाककर	प्रथम सं• १९७९, दिल्ली
१७]	हिन्दी नाटक और रंगमंच	प्र• पवनकुमार मिश्र	प्रथम सं• १९८४, दिल्ली
१८]	हिन्दी रेडिओ - नाटक अद्यतन - अध्ययन	डॉ• जयभगवान गुप्ता	प्रथम संस्करण १९८२, दिल्ली
१९]	रंगदर्शन	नेमिचंद जैन	दूसरा संस्करण १९८३, दिल्ली
२०]	हिन्दी साहित्य का इतिहास	रामचंद्र शुक्ल	नागरी प्रचारिणी काशी प्र•सं•२०१८

२१]	हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ	डॉ॰ शिवकुमार शर्मा	सप्तम संस्करण १९७८, दिल्ली
२२]	हिन्दी समस्या नाटक	माचाता ओझा	प्रथम संस्करण दिल्ली
२३]	हिन्दी रंगमंच का इतिहास	चंदुलाल दुबे	जवाहर पुस्तकालय १९७४, मथुरा
२४]	आधुनिक हिन्दी नाटक	डॉ॰ नगेंद्र	षष्ठम, संस्करण १९६०, आगरा
२५]	हिन्दी साहित्य का इतिहास	संपादक डॉ॰ नगेंद्र	--

0000

परिशिष्ट - दो

डॉ. शंकर शेष के नाटक --

	नाम	लेखनकाल	प्रकाशक	प्रकाशन काल
१]	मूर्तिकार	१९५५	आर्य बुक डेपो नई दिल्ली	१९७२
२]	रत्नगर्भा	१९५६	जगतराम एण्ड सन्स दिल्ली	१९८४
३]	नई सभ्यता के नये नमूने	१९५६	पांडुलिपि	
४]	बेटोंवाला बाप	१९५८	अनुपलब्ध	
५]	तिल का ताड़	१९५८	पांडुलिपि	
६]	बाढ़ का पानी	१९६८	सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली	१९८४
७]	बिन बाती के दीप	१९६८	पराग प्रकाशन, दिल्ली	१९८५
८]	बंधन अपने अपने	१९६९	अनादि प्रकाशन, इलाहाबाद	१९७२-७३
९]	खजुराहों का शिल्पी	१९७०	अनादि प्रकाशन इलाहाबाद	१९७२
१०]	फन्दी	१९७१	--- वही --	१९७८
११]	एक और द्रोणाचार्य	१९७१	पराग प्रकाशन, दिल्ली	१९८३
१२]	कालजयी	१९७३	सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली	१९८७
१३]	घरौंदा	१९७४	पराग प्रकाशन, दिल्ली	१९७८
१४]	अरे ! मायावी सरोवर	१९७४	--- वही ---	१९८१
१५]	रक्तबीज	१९७६	सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली	१९८२
१६]	पोस्टर	१९७७	पराग प्रकाशन, दिल्ली	१९८३
१७]	राक्षस	१९७७	पांडुलिपि	
१८]	चेहरे	१९७८	सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली	१९८३
१९]	कोमल गांधार	१९७९	पराग प्रकाशन, दिल्ली	१९८२
२०]	आधी रात के बाद	१९८१	आर्य प्रकाशन मंडळ, दिल्ली	१९८३
२१]	त्रिकोण का चौथा कोण		अप्रकाशित - अनुपलब्ध	

परिशिष्ट - तीन

डॉ. शंकर शेष के नाटकों को प्राप्त पुरस्कार.

१] मध्यप्रदेश शासन से " बाढ़ का पानी : " चंदन के दीप " पर सात हजार रुपये का पुरस्कार.

२] मध्यप्रदेश शासन से " अंधा अपने अपने " पर ग्यारह सौ रुपये का पुरस्कार

३] " घरौंदा तथा " दुरियाँ " फिल्मों के लिए आशिर्वाद पुरस्कार

४] फिल्म " दूरियां " के लिए " फिल्मफेअर " पुरस्कार

५] मूर्तिकार - श्रीनगर को नाटक प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार से सन्मानित.

६] बिन बाती के दीप :- ८ जनवरी १९८८ को महाराष्ट्र राज्य नाट्य प्रतियोगिता में द्वितीय पुरस्कार

७] एक और द्रोणाचार्य :- कलकत्ता की अनामिका नाट्य संस्था ने १९७५ को श्रेष्ठ नाट्यकृति घोषित किया।

८] पोस्टर :- सुवर्ण महोत्सवी प्रयोग ने नया कीर्तिमान स्थापित किया। ८ जनवरी १९८८ में महाराष्ट्र राज्य नाट्य स्पर्धा में ३००० का प्रथम पुरस्कार.

00000

BABASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
UNIVERSITY, KOLHAPUR